ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-1* February- 2021
Innovation The Research Concept

सूत्रकालीन धर्म–दर्शन की पृष्ठभूमि

Theological Background of Philosophy

Paper Submission: 12/02/2021, Date of Acceptance: 20/02/2021, Date of Publication: 22/02/2021

ध्यानेन्द्र नारायण दूबे
सह प्राध्यापक,
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, उ०प्र०, भारत

सारांश

वैदिक धर्म के तीन प्रमुख पक्ष है–1. देवता, 2. यज्ञ तत्त्व, 3. दार्शनिक चिन्तन, परन्तु सूत्र कालीन जीवन दर्शन में यज्ञ तथा यज्ञ से सम्बन्धित दार्शनिक चिन्तन का प्रसार दिखलाई पड़ता है और यज्ञ एवं याज्ञिक कर्मकाण्ड को समस्त देवतत्त्व, जड़तत्त्व एवं जीवतत्त्व का मूल मान लिया गया है। धृति, हवि व समिधायें तथा कर्मकाण्ड के द्वारा ब्रह्मज्ञान तथा समस्त सांसारिक उपलब्धियों के प्राप्ति का आधार बताया गया है।

Vedic religion has three major aspects - 1. Deity, 2. Yajna Tattva, 3. Philosophical Thinking, but the philosophy of life in the sutra shows the spread of philosophical thinking related to Yajna and Yajna, and Yajna and Yajnaic rituals have been assumed to be the origin of all deity, inertia and sustenance. Through dhriti, havi and samodhiyas and rituals, it has been said to be the basis of the attainment of brahm Gyan and all worldly achievements.

मुख्य शब्द : यज्ञीय, लुप्तप्राय, पुण्यकाय, अन्नाद्य, ब्रह्मवर्चस्व, त्वष्टा, धातृ, सप्तसि, सावितृ, फुल्लकुसुमित, परमेष्ठि, वैश्वानर, धावापृथिवि, मित्रावरूण।

Yagya, Endangered, Punyakayya, Annadya, Brahmavarchasva, Tvashta, Dhatru, Saptasi, Savitr, Fulkusumit, Parmeshtha, Vaishnavar, Dhvaputvithi, Friendly

प्रस्तावना

वैदिक धर्म के तीन प्रमुख पक्ष हैं– 1. देवतत्त्व, 2. यज्ञ तत्त्व एवं 3. दार्शनिक चिन्तन। सूत्रकालीन धर्म में देवतत्त्व का ह्रास तथा यज्ञ और दार्शनिक चिन्तन की दिशा में झुकाव पाते हैं। तत्कालीन धर्म के अन्तर्गत यज्ञीय कर्मकाण्डों का विस्तार और सूक्ष्म तत्व–चिन्तन की गरिमा समान रूप से दृश्य है। इस काल की धार्मिक मान्यताओं के अनुसार यज्ञ ही वह परम शक्ति साधन है, जिसके अनुसार देवता भी वशीभूत किये जा सकते हैं।[1] इसी के द्वारा लौकिक एवं परलौकिक सुख सम्भव है। इस युग में यज्ञ मूलक धर्म का जो अतिशय विकास एवं विस्तार हुआ, उसके परिणामस्वरूप मूल धार्मिक भावना लुप्तप्राय हो गयी और धर्म का प्रतीकात्मक एवं आडम्बर कलेवर ही अधिक महत्वपूर्ण होगया।[2]

इस समय यज्ञ का तात्पर्य किसी कामना विशेष से किसी देवता विशेष को उद्दिष्टकर हविर्द्रव्य प्रदान करना था।[3] यही यज्ञ हमारे श्रौत सूत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य है, जिसका मुख्य रूप से त्रिधा (हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ और पशुयज्ञ के रूप में) विभाजन है। इन यज्ञों का अनुष्ठान ब्रह्मवर्चस एवं तेज, पशु अन्नाद्य, प्रतिष्ठा, पुत्र, स्वस्ति, पुरोधा, धन, ग्राम, अपरिमित ऐश्वर्य क्षत्र अथवा राज्य–यश, स्वर्ग, पुण्यकाम धारण आदि विभिन्न कामनाओं की पूर्ति हेतु सम्पन्न किया जाता था।[4] इतना ही नहीं, इन यज्ञों के अनुष्ठान से मनुष्य मृत्यु जैसे अवश्यम्भावी दुःखों को भी पार कर जाता है तथा ब्रह्म–हत्या जैसे महान पापों से भी वह छुटकारा पा जाता है।[5]

श्रेष्ठतम् यज्ञ में जो सामग्री आहुत करनी पड़ती है, वह तीन प्रकार की है। पुरुष सूक्त का निम्नांकित मन्त्र इन तीन प्रकारों का निर्देश कर रहा है–

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो स्यासी दाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।

सामग्री के तीन प्रकार– धृत, हवि और समिधायें हैं। सृष्टि में यही वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुयें हैं। जैसे हवन में घी और सामग्री की आहुतियाँ दी जाती हैं और समिधाओं द्वारा अग्नि प्रदीप्त होती रहती हैं, जो घी और हवि को खाकर समस्त देवों तक उनके अंशों को पहुँचा देती हैं, उसी प्रकार वसन्त

की सरस, सुहावनी, फुलल्कुसुमित, आम्र मंजरित .... इस सृष्टि रूपी हवन–कुण्ड में ग्रीष्म द्वारा प्रदीप्त प्राणाग्नि को घी द्वारा समिद्ध करती रहती है और शरद ऋतु अपनी घनघान्यादि शस्य सम्पदा की हवि खिलाकर इसका पोषण एवं संवर्धन करती रहती हैं। इसे हम सृष्टि का काल यज्ञ भी कह सकते हैं। यदि यह यज्ञ न चले तो सृष्टि तथा सृष्टि के प्राणी कोई भी सुरक्षित नहीं रह सकते।[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्कालीन समाज में लोग विविध देवताओं को प्रसन्न करने के लिए छोटे–बड़े अनेकानेक यज्ञों का सम्पादन करते रहते थे। ये देवता–प्रजापति, विष्णु, मित्रावरुण, अश्विन, विश्वदेव, इन्द्र, आदित्य, सरस्वती, द्यावापृथिवी, ब्रह्म, पूषा, मरूत, वरुण, रुद्र, त्वष्टा, हरि, सवितृ, महेन्द्र, परमेष्ठिन, ब्रह्मणस्पति, यम, वायु, पृथ्वी, सप्तषि, सोम, बृहस्पति, अदिति, धातृ, विश्ववर्मन, वैश्वानर, इन्द्राग्नि तथा सूर्य आदि हैं। [7]

अध्ययन के उद्देश्य

वस्तुतः वैदिक देवचिन्तन का क्रमिक विकास हुआ है और अन्ततः भौतिक संतुष्टि के फलस्वरूप ही मोक्ष सभी का मूल उद्देश्य रहा है। पारलौकिक सुख की प्राप्ति हेतु सभी विचारक, धर्म दर्शन अपने–अपने समायानुकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपने मत को व्यक्त किया है। सूत्र ग्रन्थ भी वैदिक परम्परा के ही हैं और उन्होंने मात्र यज्ञिय कर्मकाण्डों द्वारा परमश्रेष्ठ के प्राप्ति का विधान किया है जो सम्भव है कि तत्कालीन परिवेश में अनुकरणीय रहा हो।

साहित्यिक समीक्षा

पी0वी0 काणे ने धर्मशास्त्रो का इतिहास भाग प्रथम, प्रथम अध्याय, मैक्समूलर ने धर्म की उत्पत्ति एवं विकास, डॉ0 राजबली पाण्डेय ने हिन्दू संस्कार, डॉ0 राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन, वाल्यूम–।, डॉ0 रामगोपाल व डॉ0 माता प्रसाद त्रिपाठी ने भारतीय इतिहास लेखन–समस्याएं एवं उपेक्षायें, डॉ0 आचार्य बलदेव, पुराण विमर्श में सूत्र कालीन सामाजिक धार्मिक पृष्ठभूमि की चर्चा की है। इस लेख में सूत्रकालीन समाज के धार्मिक, दार्शनिक पृष्ठभूमि को उद्घाटित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

इन देवताओं का अस्तित्व ऋग्वेद में ही था। ऋग्वेद में ये देवता किसी अप्रत्यक्ष सत्ता विविध शक्तियों के द्योतक थे।[8] सूत्रकाल का समागम होते–होते इनका रूप मूर्त हो गया। बहुत से देवता तथा इन्द्र जिनका स्थान ऋग्वेद में महत्वपूर्ण था, इस समय गौण हो गया। इसके विपरीत अल्प महत्व के देवों यथा– रुद्र, विष्णु आदि ने पर्याप्त महत्ता प्राप्त कर ली। बहुसंसख्यक देवताओं के कारण श्रौतसूत्रकालीन देवता विषयक सिद्धान्त को बहुदेववाद कहा जा सकता है। ये देवता यज्ञ के प्रदत्त हवियों से प्रसन्न होकर यज्ञकर्ता की सहायता करते तथा उनकी सभी कामनाओं की पूर्ति करते थे। यज्ञ का इस काल में सैद्धान्तिक क्रियात्मक उभय पक्षीय विकास हुआ। जीवन के प्रति लोगों का दृष्टिकोण आशावादी था। जीवन से पलायन की प्रवृत्ति नहीं थी। लोगों की ''जीवेम शरदः शतम'' में दृढ़ आस्था थी तथा आयुष्क कामना से वे यज्ञों का सम्पादन भी करते थे। हम सैकड़ों वसन्त देखे, हम सैकड़ों वसन्त में निवास करें तथा हम सैकड़ों वसन्त सुन सकें। [9]

सूत्रकालीन समाज में धर्म एवं यज्ञ की प्रधानता होते हुए भी जीवन के प्रति लोगों का सन्तुलित दृष्टिकोण था। लोगों का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष समन्वित मात्रा में अभीष्ट था, कर्म सिद्धान्त में दृढ़ आस्था यज्ञों की व्यापकता से स्पष्ट हो जाती है। सूत्रकालीनसमाज में ईश्वर, आत्मा की अमरता, स्वर्ग तथा कर्म योग की मान्यतायें प्रचलित थी। लोगों की दृष्टि, आध्यात्मिकता से अनुप्राणित थी, फिर भी वे योगी नहीं थे। भौतिक जीवन भी सुखी एवं समृद्ध था, सच्चरित्र में लोगों की अडिग आस्था थी। दैनिक जीवन में लोगों की सत्य औचित्य में निष्ठा, काम सम्बन्धों में नैतिकता, बड़ों के प्रति श्रद्धा, ईमानदारी दयालुता, पवित्रता का महत्वपूर्ण स्थान था।

श्रौत सूत्रों में विर्णित यज्ञीय अनुष्ठान, वास्तव में उच्चस्तरीय दार्शनिक प्रकृति के रहे हैं। अस्तु सामान्य जन जीवन में प्रचलित धार्मिक–प्रवृत्तियों के प्रितिबिम्ब गृह्य सूत्रों में देखे जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उपनिषदों में व्यक्त ज्ञान मूलक धारणायें और श्रौत यज्ञानुष्ठानों के प्रतीकत्व को प्राचीन भारत की गम्भीर दार्शनिक के प्रतिबिम्ब के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सूत्र कालीन समाज में प्रचलित धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों के परिज्ञान के लिए श्रौत सूत्रों के अतिरिक्त गृह्य एवं धर्म सूत्रों का भी सहारा लेना पड़ेगा। तात्पर्य यह कि तत्कालीन धर्म–दर्शन के प्रितिबिम्ब समग्र कल्प साहित्य में विद्यमान हैं।

ब्रह्म की अवधारणा

वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत उसके अन्तिम अंश के रूप में उपनिषदों का विशेष महत्व इस बात में है कि वे ज्ञानमूलक प्रवृत्ति अथवा ज्ञानकाण्ड के प्रवर्तक रहे हैं (जब कि प्रमुख वैदिक साहित्य, संहितायें, ब्राह्मण एवं आरण्यक कर्मकाण्ड प्रधान रहे हैं) कतिपय सूत्र ग्रन्थों में औपनिषदिक ज्ञान विशेषकर ब्रह्म विषयक अवधारणा को व्यक्त करने वाले सन्दर्भ मिलते हैं। उदाहरण के लिए आपस्तम्ब कुछ ऐसे सन्दर्भ (श्लोक) प्रस्तुत करता है जो सम्भवतः किसी उपनिषद से ग्रहण किये गये प्रतीत होते हैं।[10] तद्नुसार ब्रह्म को समस्त प्राणिजगत् में व्याप्त बताया गया है, वह प्राणियों के हृदय में बसता है, वह अमर है और पाप से मुक्त है और वे जो इस रहस्य को जानते हैं अमर हो जाते हैं। समस्त प्राणि जगत् में व्याप्त परब्रह्म, शाश्वत, अमर और नित्य है। वह शरीर और उसके अवयवों शब्द स्पर्श आदि से मुक्त है, वह परम–पावन एवं परिशुद्ध है, वही समग्र ब्रह्ममाण्ड और परमपद है ..... वही मूल कारण है।

देव–मण्डल

वैदिक देवशास्त्र में यास्क आदि निरुक्तकारों की दृष्टि में देवताओं की विविध कोटियाँ रही हैं– पृथ्वीस्थानीय, द्युस्थानीय एवं अन्तरिक्षस्थानीय। इनमें क्रमशः अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र (अथवा वात) अपने मण्डल के सर्वश्रेष्ठ देवता माने गये हैं। शेष देवगण इन्हीं से सम्बद्ध रहे हैं।[11] श्रौतसूत्रों में अनेक देवताओं को यज्ञ भाग अर्पित करने के वर्णन हुए हैं। यह इस बात का परिचायक है कि

यज्ञ कर्ता इन सभी देवताओं के प्रति, अपनी कामनाओंकी पूर्ति के निमित्त आस्थाभाव रखता था। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक आर्य परम्परा में सूत्रों के रचनाकाल तक कुछ नये देवताओं की भी उपासना होने लगी थी। जिन महत्वपूर्ण वैदिक देवताओं को सूत्रकारों ने यज्ञीय अनुष्ठानों में स्वीकार किया, उनके नाम इस प्रकार हैं– इन्द्र, अग्नि, प्रजापति, सवितृ (सविता), पूषा, वरुण, मित्र, विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, मरूत, त्वष्टा, धावापृथिवी, विश्वदेव, सोम, सूर्य, अश्विनद्वय, बृहस्पति, क्षेत्रपति, वास्तोष्पति, वाचस्पति, महेन्द्र, मातरिश्वा, यम, वायु, अदिति, धातृ, विश्वकर्मन्, सरस्वती आदि।

श्रौतसूत्रों में अग्नि की प्रतिष्ठा पूर्णवत् विद्यमान दिखाई देती है, क्योंकि सभी तरह के यज्ञीय अनुष्ठानों में अग्नि का स्तवन किया जाता था। यज्ञीय अनुष्ठानों में अग्नि की तुलना किसी देवता से नहीं की जा सकती। इन्द्र की कतिपय यज्ञों में यज्ञ भाग मिलता था। रुद्र की महत्ता अवश्य ही बढ़ती हुई दिखाई देती है। गृह्यसूत्रों में उनके विविध नामों से स्तुति की गयी है, उदाहरणार्थ– उन्हें कहा गया है– पशुपति, शिव, हर, भव, महादेव, मृड, उग्र, भीम, रुद्र, ईशान, शंकर, शर्व एवं त्र्यम्बकं । इस देवता के सम्मान में अनुष्ठित शूलगव नामक यज्ञ अतिप्रसिद्ध रहा है। इसके अतिरिक्त बलिहरण के समय भी रुद्र को भाग प्राप्त होता था और प्रत्येक गृह्य यज्ञ के अन्त में रुद्र को यज्ञ वास्तु नामक हविष्ट प्रदान किया जाता था। वास्तव में रुद्र की प्रतिष्ठा उसके एक विशेष गुण के कारण अधिक दिखाई देती है। रुद्र को समर्पित प्रत्येक यज्ञ में रुद्र की स्तुति यज्ञ कर्ता को उनके अभिशाप से बचाने के लिए की जाती थी, जब कि इन्द्र, अग्नि, विष्णु एवं सविता की स्तुति वरदान प्राप्ति के निमित्त की जाती थी।

रुद्र के समान विष्णु की भी महत्ता इस युग में बढ़ती हुई दिखाई देती है। अनेक श्रौत एवं गृह्य सूत्रों में विष्णु को यज्ञ भाग दिया जाता था। बौधायन गृह्य सूत्र ने विष्णु बलि नामक कृत्य का वर्णन किया है, जिसमें विष्णु के प्रसिद्ध नाम नारायण का उल्लेख सूत्रों में मिलता है।[12] कुछ सूत्रों में नारायण बलि नामक एक कृत्य का वर्णन मिलता है।[13] इसमें सन्देह नहीं कि विष्णु की जो प्रतिष्ठा सूत्र युग में बढ़ी, उसने आगे चलकर इस देवता को सर्वश्रेष्ठ देवता बना दिया।

बलिहरण यज्ञ में जिन देवताओं को बलि प्रदान की जाती थी, उनमें धनवन्तरि, वैश्रवण (कुबेर या धनपति), अनुमति श्री एवं भद्रकाली के नाम उल्लेखनीय हैं। उपनयन संस्कार में सूर्य एवं प्रजापति जैसे देवों के अलावा कुबेर, महाराज, तक्षक एवं वैशालेय की भी आराधान बटुक की सुरक्षा के लिए की जाती थी। यह वर्णन भारद्वाज गृह्य सूत्र में मिलता है।[14] कुछ गृह्य सूत्रों में समावर्त्तन संस्कार के अन्तर्गत शक एवं जंजभ नामक नये देवताओं का वर्णन मिलता है।[15] इसी तरह कौशिकसूत्र[16] में उपनयन संस्कार के वर्णन मेंअनेक देवताओं का वर्णन मिलता है, जिन्हें असामान्य कहा जा सकता है। उनके नाम हैंशूलवाण, शुंजय, क्षात्राण, मायुन्जय, माल्व, तक्षक, वैशालेय एवं हाहा हूहू जैसे गन्धर्व, महाकाव्यों एवं पुराणों में तक्षक एवं वैशालेय नामों की गणना सर्व नामों के रूप में हुई है।

सूत्र ग्रन्थों में जिन अन्य देवी–देवताओं की उपासना के सन्दर्भ मिलते हैं, उनमें सीता (कृषि की अधिष्ठात्री देवी) श्रद्धा मेधा एवं भूति के नाम महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त इन्द्राणी, वरणानी, रुद्राणी के नाम उल्लेखनीय हैं। सीता आशा, अरडा एवं अनधाकी गणना देवियों के रूप में हुई हैं। इसी तरह ही, श्री, लक्ष्मी, पुष्टि, काली, षष्ठि, भद्रकाली और मही शिखा के उल्लेख मिलते हैं। मानव गृह्यसूत्र (2.13) में षष्ठिकल्प नामक एक गृह्य कृत्य का वर्णन मिलता है। यह कृत्य सांसारिक समृद्धि अथवा ऐश्वर्य के लिए सम्पादित किया जाता था। बौधायन गृह्य सूत्र में षष्ठि को श्री का एक नाम बताया गया है।[17]

विनायक

मानव गृह्य सूत्र में शालकंटकट, कूऽमाण्डराज पुत्र, उष्मित और देव यजन नामक चार विनायकों के नाम मिलते हैं।[18] इन विनायकों के विलक्षण स्वरूप एवं पूजा विधान का वर्णन इस गृह्य सूत्र में हुआ है। इनकी स्तुति निम्नलिखित विभिन्न नामों से की गई हैविमुख, श्येन, वक, यक्ष, कलह, भीर, विनायक, कूऽमाण्ड राजपुत्र यज्ञविक्षेपिन, कुलंगापमार, यूपकेशिन, सूपरक्रोडिन, हैमवत, जम्भक, विरूपाक्ष, लोहिताक्ष, वैश्रवण, महासेन, महादेव एवं महाराज। याज्ञवल्क्य स्मृति में अम्बिका को विनायक की मात्रा बताया गया है, लेकिन वहाँ एक ही विनायक की चर्चा है। ऐसा प्रतीत होता है कि विनायक, विनाशाक शक्ति के रूप में जाने जाते थे। इसीलिए मूलरूप से वे अनार्य वर्ग के देवता रहे होंगे।[19]

दैत्य–दानव

सूत्र ग्रन्थों में अनेक ऐसे तत्त्वों का वर्णन है, जिन्हें दैत्य–दानव वर्ग में रखा जा सकता है। उनके नाम इस प्रकार मिलते हैं– शण्ड, मर्क, उपवीर, शैंडिकेय, उलूखल, मलिम्त्कुच, द्रोणास, च्यवन, आलिखत, अनिमिष, किंवदन्त, उपश्रुति, हर्यक्ष, कुम्भी, शत्रु, पातपाणि, नृमाणि, हंत्री–मुख, हर्षपारण, केशिनी, श्वलोमिनी, बजाबोजा, उपकासिनी आदि।[20]

यज्ञधर्म की उपादेयता

यह सुविदित है कि सूत्रकालीन समाज यज्ञ प्रधान समाज रहा है और इस समाज में जो धार्मिक अनुष्ठान होते थे उनके मूल में यज्ञ होता था। लोक में यज्ञ की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इसकी उपादेयता का संकेत यज्ञधर्म के करने वालों अर्थात् यजमानों की आकांक्षाओं और विश्वासों में प्रतिबिम्बित हैं। ये आकांक्षायें कुछ न कुछ प्राप्ति अर्थात् कामना से जुड़ी हुई हैं जो संक्षेप में इस प्रकार रही हैं– पशु–ब्रह्म, अभिचार–प्रतिष्ठा, पुत्र, यश, वृष्टि, लाभ,श्री, पशु, राज्यदृश्य, स्वर्ग, ब्रह्म–वर्चस, ग्राम, बल, इन्द्रिय, तेजस, प्रजा, श्री–राष्ट्र–मित्रायुश्च, पति, भग, ऋद्धि, अतिष्ठिा इत्यादि।[21]

निष्कर्ष

इसमें संदेह नहीं कि बाद में बहुदेववादी प्रवृत्ति दिखाई देती है। विभिन्न देवताओं को महान एवं अत्यन्त शक्तिशाली माना जाता था, जिन्हें यज्ञीय बलि प्रदान करके प्रसन्न किया जाता था, ताकि वे यज्ञ कर्ता को वांछित वरदान दे सकें। इस प्रकार तत्कालीन समाज पर यज्ञ

सिद्धान्त का, सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही दृष्टियों से व्यापक प्रभाव था। चूँकि यज्ञ का अतिशय महत्व था, अतः इसके प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा थी। लोग. अपने दीर्घ जीवन और समृद्धिशाली जीवन के लिए देवपूजन और यज्ञ कर्म करते थे।

यज्ञ की उपादेयता को ध्यान में रखते हुए हम यही कह सकते हैं कि यज्ञ के द्वारा हम उस परम यज्ञ स्वरूप प्रभु के पास पहुँचते हैं, जिनसे सृष्टि को यज्ञ के साथ ही उत्पन्न किया था और साथ ही आज्ञा दी थी कि हम इसी यज्ञ प्रणाली द्वारा अपने अभ्युदय में संलग्न हों। यज्ञ को श्रेष्ठतम् कर्तव्य कहा गया है। स्वस्ति का पथ यही है सम्भवतः इसी लिए वेद इस विश्व के मूल में यज्ञ की भावना को स्वीकार करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राधाकृष्णन, इण्डियन फिलासफी, वाल्यूम–1, पृष्ठ– 123 ।*
2. *तैत्तिरीय संहिता– 2.3.1.5 पंचविंश ब्राह्मण– 9.2.22।*
3. *कात्यायन श्रौतसूत्र 1.2.2– द्रव्यं देवता त्यागः ।*
4. *वाराह श्रौतसूत्र– 1.2.2.1, 1.2.4.15, 1.3.7.6, 1.4.4.42, 1.4.4.47, 1.5.3.1 आदि।*
5. *तत्रैव– 3.4.5.32– तरति मृत्यं तरति पाप्मानं तरति बह्म हत्यायो श्वमेधेन यजते..।*
6. *डॉ0 मुंशीराम शर्मा, वैदिकी, पृष्ठ– 410।*
7. *वाराह श्रौतसूत्र– 1.3.1.6–18, 1.3.5.1, 1.4.4.23, 25, 28, 1.5.1.2, 11, 1.5.1.19, 1. 5.2.46–48, 1.5.3.8, 1. 5.5.5.–6, 1.6.2.10 आदि ।*
8. *ऋग्वेद– 1.164.46– एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।*
9. *वाराह श्रौत सूत्र 1.5.5.7, पारस्कर गृह्यसूत्र– 1.16.17 ।*
10. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र– 1.8.22.4–7, 1.8.23.2 ।*
11. *मैक्डॉनल, ए0ए0, वैदिक माड्थॉलोजी, पृष्ठ..... ।*
12. *लाट्या0 श्रौ०सू०– 10.13.4, कात्या0 श्रौत सूत्र– 24. 7.33, शांख्या0 श्रौ०सू०– 16. 13.1, आपस्तम्ब श्रौ०सू0– 16.28.3।*
13. *वैखान0 गृ0सू०– 8.4, वैखानप0 ध0सू0– 3.6।*
14. *भारद्वाज गृह्यसूत्र– 1.8.8.1 ।*
15. *हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र– 1.10.4, भारद्वाज गृह्य सूत्र– 2. 20, 52.12 ।*
16. *कौशिक सूत्र– 66.17 ।*
17. *द्रष्टव्य– रामगोपाल, तत्रैव, पृष्ठ– 467 ।*
18. *मानव गृह्यसूत्र– 2.14 ।*
19. *विस्तार के लिए द्रष्टव्य– रामगोपाल, तत्रैव, पृष्ठ रू 467–68*
20. *तत्रैव, पृष्ठ– 270*
21. *स्वर्गकाम–पशुकाम–भ्रातृव्यक्तां प्रथमः ।*
22. *अग्निष्टुद्रब्रह्मवर्चस–वीर्यान्नारय–प्रतिष्ठा–कामानां, यश्रापूत इस मन्येतस्वर्गकामस्यतपेयः।*